International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)

E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में अस्तित्ववाद की प्रासंगिकता का अध्ययन

Pratibha Solanki[1], Dr. Farah Mehar[2]

[1]Research Scholar, Department of Education, Maulana Azad University, Jodhpur, Rajasthan
[2]Assistant Professor, Department of Education, Maulana Azad University, Jodhpur, Rajasthan

शोध सार :

अस्तित्ववाद समकालीन युग का एक महत्वपूर्ण और लोकप्रिय दर्शन है। जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, यह "अस्तित्व" यानी मनुष्य के होने और उसके जीवन के अर्थ की विवेचना करता है। इस दर्शन के अनुसार मनुष्य एक सांसारिक और सामाजिक प्राणी है, जिसका जीवन सीमित है, लेकिन वह पूर्णतः स्वतंत्र है और अपने भाग्य का निर्माता स्वयं होता है। अस्तित्ववाद मनुष्य के वास्तविक स्वरूप, उसकी स्वतंत्रता, जिम्मेदारी और चुनावों पर गहन चिंतन करता है। इसलिए इसे मानववादी दर्शन भी कहा जाता है।

यह कहना भी सही है कि अस्तित्ववाद बिल्कुल नया दर्शन नहीं है। इसके बीज प्राचीन और मध्यकालीन चिंतकों में भी मिलते हैं, जैसे सुकरात, संत ऑगस्टाइन और ब्लेज़ पास्कल। इन विचारकों ने मनुष्य के आंतरिक अनुभव, नैतिकता और अस्तित्व से जुड़े प्रश्नों पर विचार किया, जो आगे चलकर अस्तित्ववाद के विकास में सहायक बने।

आधुनिक अस्तित्ववाद के प्रमुख दार्शनिक ज्याँ-पॉल सार्त्र के अनुसार, "अस्तित्व सार से पहले आता है" (Existence precedes essence)। इसका अर्थ है कि मनुष्य पहले अस्तित्व में आता है और फिर अपने कर्मों और चुनावों से अपना स्वरूप (essence) स्वयं बनाता है। इस सिद्धांत के अनुसार मानव जीवन में आत्मनिष्ठा (subjectivity) और बाहरी परिस्थितियाँ (environment) दोनों की भूमिका होती है।

मुख्य बिन्दु : दार्शनिक विचार, व्यक्तित्व निर्माण, नैतिकता, आत्मनिष्ठा, मानववादी दर्शन, स्वतंत्रता, अस्तित्ववाद, भाग्य का निर्माता

प्रस्तावना :

सार्त्र के अनुसार "अस्तित्व सार से पहले है" (Existence precedes essence)। इसका अर्थ है कि मनुष्य पहले अस्तित्व में आता है, और बाद में अपने कर्मों, निर्णयों और चुनावों के माध्यम से अपना स्वभाव (सार) स्वयं निर्मित करता है। मानव अस्तित्व से पहले कोई निश्चित "मानव स्वभाव" निर्धारित नहीं होता। मनुष्य को किसी ईश्वर द्वारा पूर्वनिर्धारित रूप में नहीं बनाया गया है, इसलिए वह पूर्णतः स्वतंत्र है।

इसके विपरीत, रेने देकार्ट जैसे दार्शनिकों ने ईश्वर को सृष्टि का आधार मानकर मनुष्य के स्वभाव को पूर्वनिर्धारित माना, जिससे मनुष्य की पूर्ण स्वतंत्रता सीमित हो जाती है। लेकिन सार्त्र के अनुसार मनुष्य जो कुछ भी है, उसके लिए वही स्वयं उत्तरदायी है। उसमें "संकल्प की स्वतंत्रता" (freedom of choice) होती है, और उसी के आधार पर वह अपने जीवन, स्वभाव और मूल्यों का निर्माण करता है।

अस्तित्ववाद में मनुष्य को “आत्म-निर्माता” (self-creator) और “अतिक्रमण करने वाला प्राणी” (transcending being) माना गया है, अर्थात वह अपनी वर्तमान स्थिति से आगे बढ़कर स्वयं को बदल सकता है। इसलिए मनुष्य को एक “चयन करने वाला अभिकरण” (choosing agent) कहा गया है।

इस दृष्टि से, मनुष्य के अस्तित्व की समस्या वास्तव में उसके स्वतंत्र निर्णय की समस्या है। जब मनुष्य अपने निर्णयों के महत्व को समझता है, तब उसके सामने दो संभावनाएँ होती हैं -

- या तो वह किसी उच्च सत्ता (ईश्वर) के प्रति समर्पण का मार्ग चुनता है,
- या फिर संसार को निरर्थक मानकर स्वयं नए मूल्यों का सृजन करता है।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि जो दर्शन मनुष्य की स्वतंत्रता, जिम्मेदारी, और उसके अस्तित्व से जुड़ी इन मूलभूत समस्याओं की उपेक्षा करता है, वह पूर्ण या वास्तविक दर्शन नहीं माना जा सकता।

अध्ययन का उद्देश्य :

1. अस्तित्ववादी विचारधारा एवं शिक्षा दर्शन का विश्लेषण करना।
2. अस्तित्ववादी शिक्षा दर्शन का अध्ययन करना तथा इसके दृष्टिकोण को जानने का प्रयास करना।
3. अस्तित्ववाद के दार्शनिक पृष्ठभूमि में इसके उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण-विधि, शिक्षक-शिक्षार्थी विद्यालय, अनुशासन आदि का अध्ययन करना।

समस्या कथन :

“वर्तमान शिक्षा प्रणाली में अस्तित्ववाद की प्रासंगिकता का अध्ययन”।

शोध विधि :

वर्तमान अध्ययन मूलतः अस्तित्ववादी विचारधारा के आधार पर उसके शिक्षा-दर्शन को सुव्यवस्थित एवं परिमार्जित करने के उद्देश्य से किया गया है। इस अध्ययन में अस्तित्ववाद के प्रयोगात्मक पक्ष को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के स्वरूप, उद्देश्यों, पाठ्यक्रम तथा शिक्षण-पद्धतियों की रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

इस शोध का मुख्य उद्देश्य यह समझना है कि अस्तित्ववादी सिद्धांतों को शिक्षा के क्षेत्र में किस प्रकार लागू किया जा सकता है, ताकि शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व का समग्र विकास हो सके तथा वे स्वतंत्र, उत्तरदायी और आत्मनिर्माण में सक्षम बन सकें।

उपयुक्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए **ऐतिहासिक अनुसंधान विधि** एवं **दार्शनिक विधि** का प्रयोग किया गया है। ऐतिहासिक विधि के माध्यम से अस्तित्ववाद के विकास, उसके प्रमुख विचारकों (जैसे ज्याँ-पॉल सार्त्र आदि) तथा उसके शैक्षिक प्रभावों का अध्ययन किया गया है। वहीं दार्शनिक विधि के द्वारा इसके मूल सिद्धांतों, अवधारणाओं एवं उनके शैक्षिक निहितार्थों का विश्लेषण किया गया है।

इस प्रकार, विषय के ऐतिहासिक एवं वैचारिक दोनों पहलुओं को ध्यान में रखते हुए इन विधियों का चयन उचित एवं आवश्यक सिद्ध होता है।

विश्लेषण :

इस अध्ययन में अस्तित्ववादी विचारधारा एवं शिक्षा-दर्शन का विश्लेषण करते हुए उसके दृष्टिकोण को समझने का प्रयास किया गया है। साथ ही, अस्तित्ववाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि के आधार पर उसके शैक्षिक पक्षों का भी विस्तृत अध्ययन किया गया है।

इस अंतर्गत शिक्षा के विभिन्न घटकों—जैसे उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण-विधि, शिक्षक-शिक्षार्थी संबंध, विद्यालय तथा अनुशासन—का अस्तित्ववादी दृष्टिकोण से विश्लेषण किया गया है। इस प्रकार यह अध्ययन शिक्षा के क्षेत्र में अस्तित्ववादी सिद्धांतों के स्वरूप एवं उनके व्यावहारिक निहितार्थों को स्पष्ट करता है।

निष्कर्ष :

इस दर्शन के अध्ययन तथा इसके द्वारा प्रस्तुत शिक्षा के स्वरूप को अपनाने से निश्चित ही शिक्षा क्षेत्र में व्यापक एवं मूलभूत परिवर्तन लाया जा सकता है। अस्तित्ववाद शिक्षा को जीवन से जोड़ता है और उसे अधिक सार्थक, जीवंत तथा व्यक्तिकेन्द्रित बनाता है।

अस्तित्ववाद में कुछ दार्शनिक ईश्वरवादी हैं, जबकि कुछ अनिश्वरवादी, जैसे ज्याँ-पॉल सार्त्र । इस कारण धर्म और नैतिकता के संबंध में अस्तित्ववादी विचारधारा में एक प्रकार की विविधता और कभी-कभी भ्रम भी दिखाई देता है। फिर भी, यह दर्शन इस बात पर बल देता है कि नैतिकता का निर्माण व्यक्ति स्वयं अपने अनुभवों और निर्णयों के आधार पर करता है।

अस्तित्ववाद के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान देना नहीं, बल्कि बालक में **सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्** की अनुभूति कराना भी है, ताकि वह अपने मूल्यों का स्वयं निर्माण कर सके और जीवन के उच्च आदर्शों को समझ सके।

इस प्रकार, अस्तित्ववादी विचारधारा वर्तमान शिक्षा प्रणाली को एक नई दिशा और जीवन प्रदान कर सकती है। यह विशेष रूप से अल्पवयस्क विद्यार्थियों के "स्व" (self) के अधिकतम विकास में सहायक होती है तथा उन्हें स्वतंत्र, जिम्मेदार और सृजनशील व्यक्तित्व के रूप में विकसित करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. अग्रवाल, कन्हैया लाल : " शिक्षा का सिद्धांत" द्वितीय संस्करण 1963 मैक मिलन कंपनी, नई दिल्ली
2. बुच ,एम.वी. : "ए सर्वे ऑफ रिसर्च एजुकेशन" एम. एस. यूनिवर्सिटी ऑफ बड़ौदा, 1974
3. मार्शल पी. : "बीइंग एण्ड हैविंग" वेस्ट मिनिस्टर 1949
4. मिश्र, हृदय नारायण : "अस्तित्ववाद", किताब घर, आचार्य नगर कानपुर -3, 1989
5. कपिल , एच. के. : "अनुसंधान विधियाँ" हरी प्रसाद भार्गव प्रकाशन, आगरा 1970
6. फाउकवी, पी. : "एग्ज़िस्टेंशियलइज़्म", लंदन, 1948
7. कामू, ए. : "द रिवेल" लंदन, 1953